भगवान महावीर के सिध्धान्तों की आज के युग में उपयोगिता

रीना जारोली एम.एस.सी. (रसायन)

कालजयी महावीर ने विचारों का ऊर्ध्वारोहण कर वस्तु, व्यक्ति एवम् जगत् की मौलिक सत्ता को साक्षात् कर लिया था। अपने केवलज्ञान (पूर्णज्ञान) से साक्षात् किये गये सत्य एवं तथ्य वास्तविक, जीवन-परक एवं निरन्तर गति प्रगतिशील है। इस द्रष्टि से गत ढ़ाई हजार वर्षों की दीर्घ अवधि में महामानव महावीर ही अविकल्प एवं नित्य आधुनिक व्यक्ति है। उनके सिद्धान्त 'मोर्डन' रैडिकल: 'डायनैमिक' एवं अपटूडेट' है। शताब्दियों की शोध-यात्रा भी उनके सिद्धांतो को धूमिल, प्राचीन एवं शिथिल नहीं कर सकती। वस्तुत: हम प्रयत्न करते हैं महावीर को अपने से जोडनें की, नकि जुड़ना चाहते हैं महावीर से।

केवलज्ञान (Absolute Knowledge) का अर्थ है पूर्ण ज्ञान की अवस्था। निरन्तर ज्ञानात्मक भाव में जीना ही केवलज्ञानी के लिए अनिवार्य है। महावीर सजगता एवं अप्रमाद की प्रतिमूर्ति थे जो हर क्षण अपने भीतर उठ रहे भाव, रूप, विचार, क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रति सचेत रहे तथा अन्य वस्तु, व्यक्ति एवं जगत् में घटित हो रहे भावों, विचारों, रुपों के प्रति भी सचेत रहे। अन्य शब्दों में निज स्वरूप एवं वस्तु स्वरुप के प्रति जागरूक महावीर के सिद्धान्त सार्वजनिक, सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक हैं। महावीर का ज्ञान सतही नहीं था। उन्होंने ऐन्द्रिक-मानसिक अवबोधन (Perception) से परे एकाग्र एवं आत्मानुभव-मूलक ज्ञान से यथार्थ को जाना। केवली घेने की साधना ही 'माडर्निटी', को सही रुप में जीने की साधना है। महावीर के सिद्धान्तों की इसी कारण आज के युग में तत्कालीन युग से भी अधिक उपयोगिता है।

आधुनिक युग तनाव, टकराव, अशांति, शीतयुध्ध, दमित जीवनमूल्य, अस्थिरता, संघर्ष एवं विषमता का युग है। व्यक्ति स्वयं में भीड़ व भीड़ में अकेला है। क्रान्तदर्शी महावीर ने समाज की ज़ड़ता, अन्धश्रद्धा, खोखलेपन पर चोट की तो व्यक्ति को प्रमाद एवं विकार से मुक्त करने के लिए झंझोड़ा भी। आइये। हम महावीर के सिद्धान्तों को वर्तमान युग कें परिप्रेक्ष्य में देखें-परखें।

अहिंसा की बांसुरी:- विश्व शांति के स्वर

निस्संदेह दो विश्वयुद्धों के परिणाम देख कोई भी देश युद्ध नहीं चाहता परन्तु एक दूसरे पर अतिक्रमण का भय और विध्वंसक शस्त्रों का निर्माण अशांतिका मूल कारण बना हुआ है। ''लीग ऑफ नेशन्स'' एवं तदनन्तर ''संयुक्त राष्ट्र संघ'' के प्रयासों के बावजूद भी स्थिति आशाप्रद नहीं है। असुरक्षा की अनुभूति के कारण शीतयुद्ध की दीर्घ अवधि से हमें गुजरना पड़ रहा है। हिंसा, टकराव, तनाव से मुक्ति हम पा सकते हैं अहिंसा से-मात्र अहिंसा से।

महावीर के सिद्धान्तों में अहिंसा मूल सिद्धान्त है। श्रावक के अणुव्रतों एवं साधक (श्रमण) के महाव्रतों में इसका प्रथम स्थान है। किसी भी जीव को मारना, सताना, किसी का शोषण करना, किसी की स्वतंत्रता का हनन करना हिंसा है। वर्तमान युग में श्रमिकों के प्रति सहानुभूति रखने पर जोर है तो महावीर ने 'अईभार' (अतिभार) एवं 'मत्तपाण विच्छेए' (भोजन-पानी से दूर करना) जैसे अतिचारों में इन्हें हिंसा ही माना है। 'एगे आया' अर्थात् स्वरुप द्रष्टि से आत्मा एक है कहकर महावीर ने विश्वबन्धुत्व पर जोर दिया है। 'स्व' का इतना विस्तार करना कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पर' का लोप हो जाय यही अहिंसा है। अहिंसा रुपी शाश्वत धर्म की व्याख्या करते हुए महावीर ने कहा-

''सव्वे पाणा ण हन्तव्वा, ण अज्ञावेयव्वा, ण परिधेतव्वा, ण परियावेयव्वा, व उद्देवेतव्वा, एस धम्मे धुवे, णिइए, सासए।''

अर्थात् प्राणियों का हनन नहीं करना चाहिए, उन पर अपनी सत्ता न लादनी चाहिए, उन्हे पीडित, परितप्त तथा उद्विग्न भी नहीं करना चाहिए। यहीं शाश्वत धर्म, ध्रुव धर्म है।

प्रतिक्रमण करते समय 'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे' कहकर सभी जीवों के प्रति क्षमा भाव रखते हुए सभी से क्षमा मांगी जाती है। ज्ञान-अज्ञान में किसी भी जीव के प्रति अप्रिय कार्य के लिए क्षमा मांगने का यही तात्पर्य है कि हमारा सभी के प्रति मैत्री भाव बना है।

''मित्ती में सव्व भूएसु, वैर मज्झं ण केवइ।'' स्पष्ट ही हम अपनी सुरक्षा चाहते है और सुख-शांति चाहते है तो अन्य जीव भी यही चाहते है। सभी प्राणी जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता।

''सव्वे जीवा विइच्छति, जीविइं न मरिज्जिइं'

-दशवै सूत्र अ. ७, गा. ११.

अहिंसा को परिभाषित करने से पूर्व महावीर ने जीवों का सूक्ष्म विवेचन किया। अपने दिव्य ज्ञान से उन्होंने अव्यवहार राशि, व्यवहार राशि (निगोद), पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु एवं वनस्पति में जीव का अस्तित्व देखा। पेड पौधौ में भी सचेतनता विज्ञान के लिए भले ही एक शताब्दी पुराना विचार हो, परन्तु महावीर ने उनके सुख-दुःखो को कितने सूक्ष्म रुप में जाना, वह आगमों में गुम्फित है। सर जगदीशचन्द्र बोस के वैज्ञानिक प्रयोगो एव बेकस्टर द्वारा निर्मित गालवेनोमीटर से हमें पेड पौधौ में संवेदनशीलता का ज्ञान होता है। परन्तु उस समय कहां थी प्रयोगशालाएं? अपनी आत्माही महावीर के लिए प्रयोग-स्थल था-अन्तर्मुखी होकर उन्होंने अनुभव-रत्न हमें दिये हैं।

अहिंसा की भावना का विकास तभी संभव है जब हर व्यक्ति इकाई रुप में ज्ञानचेता होकर स्वाभाविकता के धरातल पर वस्तुओं के साथ एवं अन्य प्राणियों के साथ सम्वादी (हारमोनियस) संबंध में जिये। अन्य शब्दों में अहिंसा का अर्थ है। स्वयं अपने स्वभाव में अभंग (अनडिस्टर्ब्ड) रहें और दूसरों को भी अपने स्वभाव में अभंग रहने दें। इस विचार से विश्व में शांति व सुख का साम्राज्य स्थापित होने में किसी प्रकार के सन्देह को स्थान नहीं है।

अपरिग्रह एवं विश्व-कल्याण

'दशवैकालिक सूत्र' में परिग्रह को परिभाषित करते हुए महावीर ने कहा है-'मूच्छा परिग्गहो वुत्तो' अर्थात् मूच्छा ममत्व ही परिग्रह है। आज विश्व में अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह की वृत्ति से जमाखोरी, कालाबाजारी एवं भ्रष्टाचार पनप रहे हैं। धन, मकान, वैभव के प्रति अटकाव से भटकाव की स्थिति पैदा हो रही है। आज महावीर के अपरिग्रवाद की नितान्त आवश्यकता है।

जीवन में अपनी अधिकतम आवश्यकताओं वस्तुओं के प्रति ममत्व त्यागना तो अपरिग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ही, अपने पास जो भी वस्तुएं है उनके प्रति भी आसक्ति नहीं रखना चाहिए। अपरिग्रह का प्रश्न सम्पत्ति के स्वामित्व से जुडा हुआ है। स्वामित्व की भावना छोडना ही अपरिग्रह है। चूंकि धन चाहे कितना भी हो, वह सीमित है और तृष्णा अनन्त (असीम) है, अंत: सीमित साधनों से असीम तृष्णा की पूर्ति नहीं की जा सकती है। तृष्णा के कारण ही संग्रह वृत्ति का उदय होता है। और यह संग्रह वृत्ति आसक्ति के रुप में बदल जाती है। आर्थिक वैषम्य, भोगवृत्ति और शोषण की समाप्ति के लिए महावीर द्वारा अनुभूत सत्य आज भी उतना ही यथार्थ है जितना कि उस युग में था। अपरिग्रह का अर्थ है कि वस्तु की स्वतंत्र सत्ता पर अपना अधिकार न जमाओ और न उसके मोह में अपने स्वभाव को मूर्च्छित, ग्रस्त, अधिकृत होने दो। स्वयं अपने भाव में रहते हुए अन्य को अपने भाव में रहने दें, यह अपरिग्रह है। अपने पल-पल परिवर्तित होते भाव। पर्याय के साथ ही दूसरे के पल-पल परिवर्तित भाव पर्याय को जाने, देखे तो परिग्रह की भावना जाग्रत ही नहीं होगी। जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय में, भोक्ता और भोग्य में निरन्तर नवनूतन भाव, पदार्थ, स्थिति का परिनमन है, वहां किसी विशेष रुप, आकार, भाव सुगन्ध, स्पर्श, ध्वनि पर रूक जाना, आसक्त हो रहना कैसे संभव है। जिस रुप या भाव पर चित्त आसक्त हो गया है, वह रुप या भाव तो उसी क्षण व्यतीत हो चुका, वहां नया भाव या रुप आ चुका। तब व्यक्ति या पदार्थ की परिणत स्थिति से हमारी आसक्ति को मनचाही तृप्ति नहीं मिल सकती। स्व. और पर का, व्यक्ति और वस्तु का, जीवन और जगत का सम्यक्-बोध होने पर अपरिग्रह स्वत: अवतरित हो जाता है।

यदि विश्व को नया रूप देना है तो महावीर का अपरिग्रह रामबाण औषधि है। व्यक्ति स्वयं को जानकर समग्र विश्व को जान सकता है परन्तु तरतमता होने पर ही। इसी की ओर इंगित कर कहा गया है-

'जे एगं जाणई, से सव्वं जाणई।,
जे सव्वं जाणई, से एगं जाणई।।'

अर्थात् जो व्यक्ति इस प्रकार से अपनी आत्मा के सुख-दु:ख को जान लेता है वह दूसरे सभी जीवों के सुख-दु:ख भी समझ लेता है। जिसने 'पर' में 'स्व' का दर्शन कर लिया वह न किसी को दु:ख पहुँचा सकता है और न किसी के सुख में बाधक ही बन सकता है।

वर्गविहीन समाज: नई दिशा

भाषा, वर्ण, लिंग की भेदपरक दीवारों से उठकर महावीर ने वर्ग विहीन समाज का स्वप्न उजागर किया था। उन्होंने स्पष्ट किया कि न जन्मगत जाति होती है और न बाह्य चिन्ह धर्म के प्रतीक-

कम्मुणो बंमणो होइ, कम्मुणो होई खत्तिओ।
कम्मुणो वइसो घेइ, सुदो हवई कम्मुणा।।

-उत्तरा. सूत्र २५/३१

अर्थात् व्यक्ति जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता। उसके कर्म ही यह निर्णय करते है।

न वि मुंडिएण समणो, न औंकारेण बंभणो।
न मुणी रण्ण वासेणं, कुस चीरेण न तावसो।।

अर्थात् सिर मुंडित कर लेने से कोई श्रमण नही होता, न ओंकार का जाप करने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मण। अरण्यवासी होने मात्र से ही कोई मुनि नहीं होता और वल्कल चीर धारण करने मात्र से कोइ तपस्वी नहीं होता।

आज के जातीय विदेष, वर्णसंघर्ष एवं पारस्परिक घृणा से बचने के लिए स्नेह, सद्भाव एवं करूणा की आवश्यकता है। यदि लक्ष्मी के लाड़ले अपने को ट्रस्टी मात्र ही मानें तो शोषण की भावना समाप्त हो जाती है। कार्ल मार्क्स ने काफी हद तक इस दिशा में सोचा परन्तु जीवन के धरातल पर जब सिध्धांत को मूर्तरुप दिया गया तो हठाग्रह के कारण हिंसा उभर आई। उनके भीतर वस्तु स्वभाव की शुद्ध क्रिया आंशिक रूप से झलकी थी परन्तु वे वस्तु की निरन्तर प्रगतिशीलता के साथ तदाकार नहीं रह सके। द्रव्य के उत्पाद और व्यय को तो उन्होंने पकडा था परन्तु ध्रौव्य उनकी दृष्टि से ओझल रह गया। ऐन्द्रिक-बौद्धिक ज्ञान की सीमाओं से उनका दर्शन अवरूद्ध हो गया।

नये समाज की परिकल्पना से पूर्व महावीर ने यह संदेश दिया कि व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता 'अप्पाकत्ता विकत्ताय, सुहाण य दुहाण य' है अर्थात् उसके कर्म ही उसे ऊंचा उठा सकते है या नीचा गिरा सकते हैं। ईश्वर को जगत्कर्ता न मानने की मौलिक मान्यता से व्यक्ति की गरिमा बढी। साथ ही सिद्ध हो गया कि व्यक्ति स्वयं स्वतंत्र, मुक्त निर्लेप और निर्विकार ईश्वरत्व प्राप्त कर सकता है। ईश्वरत्व को प्राप्त करने के साधनों पर किसी वर्ग विशेष या व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं हैं। मन की शुद्धता व आचरण की पवित्रता के बल पर कोई भी इसे प्राप्त कर सकता है।

अनेकांतवाद: वादों का अन्त

अनेकान्त या स्यादवाद बौद्धिक दृष्टिकोण की नयी दिशा है जो अहिंसा का ही व्यापक रुप है। रागद्वेष जनित संस्कारो के वशीभूत न होकर दूसरों के दृष्टिकोण को ठीक से समझना अनेकांतवाद है। जबवस्तु या ज्ञेय बहु-आयामी, बहु-पर्यायी है तो किसी भी मत, वाद या सिद्धान्त को पूर्णरुप से सत्य नहीं कहा जा सकता। पूर्ण ज्ञान की स्थिति में ही किसी वस्तु के सभी पर्यायों देखा या जाना जा सकता है।

महावीर कहते हैं कि वस्तु जो इस क्षण है, वही अगले क्षण नहीं है और फिर भी अपने तात्विक रुप में सदा वही है। अर्थात् इस जगत् में प्रतिक्षण कुछ व्यतीत हो रहा है, कुछ नया उत्पन्न हो रहा है तो यह दम्भ कोई नहीं कर सकता कि उसने सबकुछ जानलिया, पूर्ण रुप से जान लिया। अत: अपना 'ही' छोडकर हम दूसरों के 'भी' को भी मानें, ऐसी समन्वय की उदारदृष्टि अनेकान्त है।

महावीर ने अनेकान्त के सिद्धान्त को तार्किक रुप देकर स्याद्वाद नाम दिया। किसी बात के सात पहलुओं पर विचारकर उन्होंने सिद्ध किया कि उसका अस्तित्व है। नहीं है। अवक्तव्य है आदि (स्यात अस्ति, स्यात नास्ति, स्यात आस्ति-नास्ति, स्यात अवकव्य, स्यात अस्ति अवक्तव्य, स्यात नास्ति अवक्तव्य, स्यात अस्ति नास्ति अवक्तव्य)। आज इस विचार से व्यक्ति, समाज, विश्व के तनाव, संघर्ष और वैमनस्य को समाप्त किया जा सकता है। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि भी परिवर्तित हो जाएगी। खुल सकेंगे मुक्तदार, जिनके पार असीम सुख एवं आनन्द है।

सम्प्रदायातीत धर्म – स्वभाव में स्थिर होना

राजमहलों के सुखों में लिप्त न रहकर महावीर ने आत्मधर्म का संदेश दिया। उनको चाह नहीं थी कि अपना कोई धर्म चलाएं। उन्होंने तो सत्य मार्ग बतलाया कि वस्तु का स्वभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही धर्म है। वस्तु अपने आप में ठीक जैसी है, ठीक वैसी ही देखना, जानना धर्म है। जो कुछ भी ज्ञान का विषय है, ज्ञेय है और तत्वत: वस्तु 'ऑब्जेक्ट' है। अर्थात् हम स्वयं निज स्वरूप में रहते हुए, द्रव्य के नित परिणमनशील रुप से संचेतना के साथ जुड़े रहें, यही धर्म है।

धर्म जो जीवन का पाथेय एवं आत्मा का प्राण है, आज बाड़ो। दीवारों। सम्प्रदायों में सिमटता जा रहा है। कहीं क्रिया की प्रधानता है तो कहीं ज्ञान की आवश्यकता है। वस्तु के स्वरूप-उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य को सम्यक् रूप से समझने की। धर्म जीवन से जुडने पर ही वास्तविक बन सकता है। यही कारण है कि महावीर ने 'है' और 'होना चाहिए' का अन्तर न मानकर यथार्थ वस्तुस्थिति में जीना ही आदर्श माना और आदर्श तथा यथार्थ को अलग नहीं स्वीकारा.

मानोविकारों पर विजय: आत्मानुशासन

इस युग में स्वास्थ्य का हास होता जा रहा है। भयंकर एवं असाध्य रोग मानव को जकडे हुए है। आज अधिकांश रोग मन से जुडे हैं, तन की पूर्ण आरोग्यता नहीं। कुंठा, भय, लोभ, असंतोष जैसे मनोरोग शरीर में स्नायु तन्तु को प्रभावित करते हैं जिससे रक्तसंचार एवं अंगोंपांगों पर प्रभाव पडता है। मन के विकारों पर नियंत्रण से ही वर्तमान युग में व्याप्त हिंसा, अपराधवृति एवं भ्रष्टाचार पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यदि हमें वास्तविक सुख प्राप्त करना है तो आत्मा के मूल स्वभाव-सरलता, समता, निर्वैर, निर्लोभ दशा में रमण करना होगा।

ननोविज्ञान एवं औषधिविज्ञान ने आज सिद्ध कर दिया है कि क्रोध से पेप्टिक अल्सर, निराशा से मन्दाग्नि, चिंता से हृदयरोग व उच्चरक्तचाप जैसे रोग पैदा हो जाते है। मानसिक चिंता विषाद से अपचन, हिस्टीरिया आदि रोग उत्पन्न होते हैं। यदि विष्लेषणका देखा जाय तो आज अधिकांश रोगों की जड़ मन में है और वे असंयम, कुत्सित इच्छाओं एवं दुर्वासनाओं से पोषित है।

आज के चिकित्साशास्त्री बाह्य कारणों से उत्पन्न रोग-कीटाणुओं के विनाश के लिए तो प्रयत्नशील है। लेकिन मनोभूमिका में उत्पन्न काम, क्रोध, मोह, अहंकार, स्वार्थपरता, कुटिलता, भय, अतृप्ति आदि विकारों से उत्पन्न रोग-कीटाणुओं के विनाश की ओर उनका ध्यान नहीं है। ऐसी स्थिति में महावीर के सिद्धान्त प्रभावक हैं। यदि हमें जीवन में सर्वांगीण विकास करना है तो आत्मधर्म के लिए सतत गतिशील रहना होगा। कुश के अग्रभाग पर ठहरी ओसबिन्दु से मानव जीवन की तुलनाकर महावीर ने **'समय गोमय मा पमायए'** का संदेश दिया है। अर्थात् समय मात्र (एक परमाणु की गतिका समय) भी प्रमाद मत करो। परिवर्तित जीवन मूल्यों के युग में भी आज आत्मधर्म की उपयोगिता कम नहीं हुई हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि महावीर के सिद्धान्तों की आज के युग में उपयोगिता असंदिग्ध है। विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरे कर्म सिद्धान्त, गुणसूत्र, संस्कार-सूत्र सिद्धान्त, परमाणु सिद्धान्त, भाषा विषयक मान्यताएँ हमें प्रेरणा देते हैं कि हम महावीर की वाणी से जुड़े। अपने दिव्य ज्ञान से महावीर ने जो अमृत हमें दिया है, उसका रसास्वादन कर हम जीवन को संस्कारित कर सके यही अपेक्षा है। युगों पूर्व धर्म दर्शन के क्षेत्र में किया गया महावीर का उद्घोष आज भी प्रासंगिक और उपादेय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org